



# International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(2): 15-18

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 10-01-2017

Accepted: 11-02-2017

संजय राम त्रिपाठी

शोध-छात्र, म०गॉ०चि०ग्रा०वि०वि०,  
चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ० ओमकार मिश्र

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, अतर्रा  
महाविद्यालय, अतर्रा, बाँदा, उत्तर  
प्रदेश, भारत

## अक्षर-विभाजन व प्रमुख संज्ञाएँ-वाजसनेयीप्रातिशाख्य व ऋग्वेदप्रातिशाख्यग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में

संजय राम त्रिपाठी, डॉ० ओमकार मिश्र

सारांश

वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में स्वरों की महत्वपूर्ण भूमिका है। मन्त्रोच्चारण के समय उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का सही उच्चारण न करने पर अनिष्ट होता है, इसीलिये स्वर-विषयक शुद्धता की दृष्टि से अक्षर-विभाजन का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। इस विषय में सूक्ष्म तौर पर यह अध्ययन किया जायेगा कि कौन-सा व्यंजन किस स्वर का अंग होगा?

**मूल शब्द:** अक्षर-विभाजन, ऋग्वेदप्रातिशाख्यग्रन्थों, वैदिक मन्त्रों, उच्चारण, स्वरों

प्रस्तावना

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में अक्षर के विषय में विस्तृत विवेचन किये गये हैं। उसके अनुसार ह्रस्व और दीर्घ – दोनों स्वरवर्ण अक्षर हैं। व्यंजन-सहित अथवा अनुस्वार- सहित अथवा व्यंजन-रहित व अनुस्वार-रहित भी स्वरवर्ण को 'अक्षर' कहते हैं। स्वरवर्ण ही अकेला या व्यंजन अथवा अनुस्वार के साथ मिलकर अक्षर बनता है। व्यंजन या अनुस्वार स्वर नहीं होते इसीलिये इनके उच्चारण में स्वरों का आश्रय लेना पड़ता है। अक्षर शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। प्रस्तुत प्रसंग में अक्षर शब्द का प्रयोग "Syllable" अर्थ में किया जा रहा है। तैत्तिरीयप्रातिशाख्य के वैदिकाभरण भाष्य में इस विषय में स्पष्ट किया गया है कि "जो दूसरों का अधीन बनकर नहीं चलता, वह अक्षर है।"<sup>1</sup> इससे यह स्पष्ट होता है कि अक्षर की अपनी स्वतन्त्र सत्ता होती है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य का इस विषय में कथन है कि ह्रस्व व दीर्घ, ये दोनों स्वरवर्ण अक्षर कहलाते हैं – "उभयेत्वक्षराणि।।"<sup>2</sup> "अनुस्वारो व्यंजनं चाक्षरागम्।।"<sup>3</sup> अर्थात् अनुस्वार और व्यंजन अक्षर के ही अंग हैं।

अक्षर दो प्रकार के होते हैं – गुरु तथा लघु।

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में कहा गया है कि एक स्वर वर्ण के पास एकाधिक व्यंजन हों तो वे उसी स्वर-वर्ण के अङ्ग होते हैं।<sup>4</sup>

जब दो स्वरों के मध्य स्थित व्यंजन हो तो वह परवर्ती स्वर-वर्ण का अंग माना जाता है लेकिन अन्तिम व्यंजन पूर्ववर्ती स्वर का अंग माना जाता है।<sup>5</sup> संयोग का प्रथम वर्ण दो स्वरों के मध्य में होने पर विकल्प से पूर्वस्थ अक्षर का अथवा परवर्ती स्वरवर्ण का अंग होता है।<sup>6</sup>

इस सन्दर्भ में वाजसनेयी प्रातिशाख्य का कहना है कि अवसान में स्थित पद के अन्त का व्यंजन अपने पूर्ववर्ती स्वर का अंग होता है।<sup>7</sup> इसी प्रातिशाख्य में यह भी कहा गया है कि संयुक्त व्यंजनों का प्रथम व्यंजन अपने पूर्ववर्ती स्वर का अंगीभूत होता है – "संयोगादिपूर्वस्य।।"<sup>8</sup> इसका तात्पर्य यह है कि अक्षर-विभाजन में संयोगादि व्यंजन अपने पूर्ववर्ती स्वर के साथ रहता है।

<sup>1</sup> तैत्तिरीयप्रातिशाख्य 1/2 का वैदिकाभरणभाष्य

<sup>2</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/19

<sup>3</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/22

<sup>4</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/22

<sup>5</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 2/23 तथा 18/33

<sup>6</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/25 तथा 18/35

<sup>7</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/106

<sup>8</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/102

Correspondence

संजय राम त्रिपाठी

शोध-छात्र, म०गॉ०चि०ग्रा०वि०वि०,  
चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश, भारत

उदाहरण— “अश्च” — इस उदाहरण में दो शकार तथा व का संयोग है। संयोगादि व्यंजन प्रथम शकार है, वह अपने पूर्ववर्ती अक्षर अकार का अंग माना जायेगा।

वाजसनेयीप्रातिशाख्य के अनुसार यम अपने पूर्ववर्ती स्वरवर्ण का अंग होता है — “यमश्च।।” उदाहरण — “रूक्वमम्”<sup>9</sup> — इस उदाहरण में दो ककार, यम तथा मकार का संयोग है, अतः प्रथम ककार और यम पूर्ववर्ती उकार के अंग माने जायेंगे।

वाजसनेयीप्रातिशाख्य में ऐसा भी विधान किया गया है कि स्पर्श व्यंजन वाद में होने पर क्रम अर्थात् द्वित्व के कारण उत्पन्न व्यंजन से परवर्ती व्यंजन भी पूर्ववर्ती स्वर का अंग होता है।<sup>10</sup> उदाहरण — “अग्निम्” — इस उदाहरण में दो ग तथा न का संयोग है, प्रथम ग क्रमज है। क्रमज ग से परवर्ती व्यंजन अर्थात् द्वितीय ग के बाद में स्पर्श नकार है, अतः प्रथम ग क्रमज होने के कारण वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/104 के कारण द्वितीय गकार प्रस्तुत विधान के अनुसार पूर्ववर्ती स्वर वर्ण अकार का अंग है, अतः अक्षर—विभाजन अगम्। निम् — इस रूप में होगा।

उपर्युक्त अक्षर—विभाजन के पश्चात् हम प्रातिशाख्यग्रन्थों में विवेचित कुछ प्रमुख संज्ञाओं के विषय में चर्चा करेंगे जो सामान्य संस्कृत के अध्ययन में उपलब्ध नहीं होती।

### • ‘समानाक्षर’ अथवा ‘सिम्’ संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में “समानाक्षर संज्ञा” को ही वाजसनेयीप्रातिशाख्य में “सिम्” संज्ञा से विवेचित किया गया है। इन दोनों प्रातिशाख्यग्रन्थों में कहा गया है कि वर्णमाला के प्रारम्भ से लेकर आठ अक्षर “समानाक्षर” अथवा “सिम्” कहे जाते हैं — “अष्टौ समानाक्षराण्यादितः।।”<sup>11</sup> “समादितौऽष्टौ स्वराणाम्।।”<sup>12</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य में ई३ तथा लृ को समानाक्षरों की कोटि में नहीं माना गया है।

### • सन्ध्यक्षर संज्ञा

“ततश्चत्वारि सन्ध्यक्षराण्युत्तराणि।।”<sup>13</sup> अर्थात् ऋग्वेदप्रातिशाख्य के अनुसार समानाक्षर वर्णों के तुरन्त बाद में आने वाले चार वर्ण ‘सन्ध्यक्षर’ कहलाते हैं। ऐसी ही मान्यता वाजसनेयीप्रातिशाख्य की भी है — “एतदुत्तरे स्वरसमाप्तिपर्यन्तावर्णाः सन्ध्यक्षरसंज्ञकाः स्युः।।”<sup>14</sup> उदाहरण — अकार की इकार के साथ सन्धि होने पर एकार, उकार के साथ सन्धि होने पर ओकार, एकार या ऐकार के साथ सन्धि होने पर ऐकार तथा ओकार या औकार के साथ सन्धि होने पर औकार अर्थात् ए, ऐ, ओ, औ ये चार वर्ण “सन्ध्यक्षर” कहलाते हैं।

### • स्वर संज्ञा

स्वयं राजन्ते इति स्वराः अर्थात् इनके उच्चारण में किसी की सहायता नहीं लेनी पड़ती, इसीलिये ‘स्वर’ कहलाते हैं। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में स्वरों की संख्या चौदह मानी गयी है।<sup>15</sup> जैसे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, ई३ और लृ। वाजसनेयीप्रातिशाख्य में स्वरों की संख्या 23 मानी गयी है।<sup>16</sup> जैसे—अ, अ, आ३, इ, ई, ई३, उ, ऊ, ऊ३, ऋ, ॠ, ऋ३, लृ, ऌ, ऍ३, ए, ए३, ओ, ओ३, ऐ, ऐ३, औ, औ३।

### • भावि संज्ञा

वाजसनेयीप्रातिशाख्य में ऐसा विधान किया गया है कि कण्ठ्य स्वर से अतिरिक्त सम्पूर्ण स्वर ‘भावि स्वर’ कहलाते हैं — “अकण्ठ्यौ भावि।।”<sup>17</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य में यह संज्ञा विहित नहीं है।

### • ह्रस्व संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में चार स्वर ही ह्रस्व कहे गये हैं — अ, ऋ, इ, उ — “ओजाः ह्रस्वाः सप्तमान्ता स्वराणाम्।।”<sup>18</sup>

इसी प्रातिशाख्य में कहा गया है कि जब ऋ का रेफ लकार हो जाता है तो ऋ ही लृ कहा जाता है। अतः इन चार ह्रस्व स्वरों के अतिरिक्त लृ वर्ण भी ह्रस्व कहा गया है। इस स्वर के विषय में वाजसनेयीप्रातिशाख्य में कहा गया है कि अ की मात्रा के बराबर उच्चारण काल वाला स्वर ‘ह्रस्व’ कहलाता है — “अमात्र स्वरौ ह्रस्वः।।”<sup>19</sup> उदाहरण — अ, इ, उ, ऋ तथा लृ।

### • दीर्घ संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में कहा गया है ह्रस्व स्वर से अतिरिक्त सभी स्वर दीर्घ कहलाते हैं — “अन्ये दीर्घाः।।”<sup>20</sup> जैसे — आ, ऋ, ई, उ, ए, ओ, ऐ और औ। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में कहीं भी लृ का सीधे ग्रहण नहीं किया गया है अतः लृ को इस प्रातिशाख्य में दीर्घ नहीं माना गया है। ऋग्वेद में जिन-जिन वर्णों का प्रयोग हुआ है उन्हीं-उन्हीं वर्णों का ही अध्ययन ऋग्वेदप्रातिशाख्य में किया गया है। वाजसनेयीप्रातिशाख्य में लृ का भी ग्रहण किया गया है, जिसका उच्चारण-काल ह्रस्व लृ का दोगुना है।

### • प्लुत संज्ञा

प्रातिशाख्यग्रन्थों में ह्रस्व स्वर से तीन गुने से अधिक उच्चारण काल वाला स्वर प्लुत कहा जाता है — “प्लुतस्त्रिः।।”<sup>21</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य में ई३ को ही प्लुतसंज्ञक माना गया है लेकिन वाजसनेयीप्रातिशाख्य में प्लुत वर्णों की संख्या नौ (9) बतलायी गयी है।

### • अणु संज्ञा

अणुसंज्ञा से तात्पर्य है अर्धमात्राकाल का भी अर्धमात्राकाल अर्थात् 1/4 मात्राकाल। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में इस संज्ञा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता किन्तु वाजसनेयीप्रातिशाख्य में कहा गया है कि व्यंजन के उच्चारण काल का आधाकाल ‘अणु’ कहलाता है — “तदर्धमणु।।”<sup>22</sup>

### • परमाणु संज्ञा

अणुकाल से आधे काल में अर्थात् 1/8 मात्राकाल परमाणु संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य में इस संज्ञा का उल्लेख नहीं किया गया है लेकिन वाजसनेयीप्रातिशाख्य में कहा गया है कि अणु का आधा भाग परमाणु होता है।

### • उदात्त संज्ञा

उदात्त शब्द ‘उत्’ तथा ‘आ’ उपसर्गपूर्वक ‘दा’ धातु से ‘क्त’ प्रत्यय करके बना है अतः उदात्त का शाब्दिक अर्थ है ऊपर उठाकर ग्रहण किया गया स्वर अर्थात् उच्च स्वर से जिसका ग्रहण होता है, उसे ‘उदात्त’ कहते हैं।<sup>23</sup>

<sup>9</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/103

<sup>10</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/105

<sup>11</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/1

<sup>12</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/44

<sup>13</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/2

<sup>14</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 8

<sup>15</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/1, 1/2, 1/30, 13/35

<sup>16</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 8/6

<sup>17</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/46

<sup>18</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/17

<sup>19</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/55

<sup>20</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/18

<sup>21</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/30, वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/58

<sup>22</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/60

<sup>23</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 3/2, ऋग्वेदप्रातिशाख्य: एक परिशीलन — प्रो० विरेन्द्र कुमार वर्मा

### • अनुदात्त संज्ञा

अनुदात्त के विषय में वाजसनेयीप्रातिशाख्य में कहा गया है कि नीची ध्वनि से उच्चरित होने वाला स्वर 'अनुदात्त' कहलाता है।<sup>24</sup> इसी सन्दर्भ में ऋग्वेदप्रातिशाख्य में कहा गया है कि उच्चारणावयवों का ढीलापन अर्थात् अधोगमन ही अनुदात्त है।<sup>25</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य में अनुदात्त के लिये 'विश्रम्भ' शब्द का प्रयोग किया गया है।

### • स्वरित संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में इस संज्ञा के लिये आक्षेप शब्द व्यवहृत है। आक्षेप के विषय में भाष्यकार उव्वट ने कहा है कि उच्चारणावयवों के तिर्यक् गमन को 'आक्षेप' कहते हैं।<sup>26</sup> इस विषय में वाजसनेयीप्रातिशाख्य का कहना है कि उदात्त और अनुदात्त के धर्मों वाला स्वर 'स्वरित' होता है।<sup>27</sup>

### • व्यंजन संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में 36 व्यंजनों का उल्लेख है, वहीं वाजसनेयीप्रातिशाख्य में 42 व्यंजनों का उल्लेख है – "व्यंजनं कादेः।"<sup>28</sup>

### • स्पर्श संज्ञा

प्रातिशाख्यग्रन्थों में क से म पर्यन्त व्यंजनों का कथन स्पर्श रूप में किया गया है।<sup>29</sup>

### • वर्ग संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में इस संज्ञा का विधान करते हुये कहा गया है कि पाँच-पाँच वर्णों के पाँच वर्ग होते हैं – "पंचते पंचवर्गाः।।"<sup>30</sup> प्रत्येक वर्ग के वर्णों का उच्चारण स्थान भिन्न-भिन्न होता है किन्तु वाजसनेयीप्रातिशाख्य में इस संज्ञा को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है लेकिन वर्णसामान्याय में स्पर्श वर्णों को पाँच-पाँच वर्णों के वर्गों में बाँटकर उपदेश किया गया है।

### • सोष्म संज्ञा

प्रातिशाख्यग्रन्थों में वर्णों के दूसरे तथा चौथे स्पर्श वर्णों को 'सोष्म' कहा गया है – "युग्मौ सोष्माणौ।।"<sup>31</sup>

### • अन्तःस्थ संज्ञा

स्पर्शवर्णों के बाद आने वाले चार वर्ण – य, र, ल, व अन्तःस्थ नाम से जाने जाते हैं – "चतस्रोऽन्तःस्थास्ततः।।"<sup>32</sup>

### • ऊष्म संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में ऊष्म संज्ञा का विधान करते हुये कहा गया है कि अन्तःस्थ वर्णों के बाद आने वाले आठ वर्ण 'ऊष्म' कहलाते हैं – "उत्तरेष्टा ऊष्माणः।।"<sup>33</sup> जैसे– ह, श, ष, स, अः, क, प, अं।

### • मुत् संज्ञा

वाजसनेयीप्रातिशाख्य में कहा गया है कि हकार से अतिरिक्त ऊष्म वर्ण 'मुत्' कहलाते हैं – "मुच्च।।"<sup>34</sup>

<sup>24</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/109

<sup>25</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 3/1, 3/2 का उव्वटभाष्य

<sup>26</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 3/1 का उव्वटभाष्य

<sup>27</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/110 का उव्वटभाष्य

<sup>28</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/47

<sup>29</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/7-8

<sup>30</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/8

<sup>31</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/13

<sup>32</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/9

<sup>33</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/10

### • अयोगवाह संज्ञा

अयोगवाह का विधान वाजसनेयीप्रातिशाख्य में किया गया है।<sup>35</sup> प्रातिशाख्यग्रन्थों में कहा गया है कि जिह्वामूलीय क, उपध्मानीय प, अनुस्वार 'अं', विसर्जनीय 'अः', नासिक्य 'हूं', यम – कुं, खुं, गुं, घुं आदि मिलकर अयोगवाह कहे जाते हैं – "अथायोगवाहा'।।"<sup>36</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य में इस संज्ञा का विधान नहीं किया गया है।

### • अघोष संज्ञा

अघोष को ही प्रातिशाख्यग्रन्थों में 'जित्' कहा गया है। वर्णों के प्रथम दो-दो वर्ण 'जित्' कहलाते हैं।<sup>37</sup> हकार के अतिरिक्त शेष ऊष्म वर्ण 'जित्' कहलाते हैं।<sup>38</sup>

### • घोष संज्ञा

प्रातिशाख्यग्रन्थों में घोष के लिये ही 'घि' संज्ञा का व्यवहार किया जाता है। अघोष या जित् संज्ञक वर्णों से अतिरिक्त सभी व्यंजन 'घि' या 'घोष' कहलाते हैं।<sup>39</sup>

### • अनुस्वार संज्ञा

'अनुस्वारं स्वरो वा व्यंजनं वा।।"<sup>40</sup>

अनुस्वार उसे कहते हैं जो किसी स्वर के बाद लगता है – "स्वरमनुभवतीत्यनुस्वारः।।"<sup>41</sup>

### • गुरु संज्ञा

दीर्घ स्वर गुरु होता है – "गुरुणि दीर्घाणि।।"<sup>42</sup> दो मात्राकाल वाले स्वर गुरु कहे जाते हैं।

### • रक्त संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में इस संज्ञा के विषय में कहा गया है कि अनुनासिक वर्ण रक्तसंज्ञक होते हैं – "रक्तसंज्ञोऽनुनासिकः।।"<sup>43</sup> "रक्तो वचनो मुखनासिकाभ्याम्।।"<sup>44</sup>

### • संयोग संज्ञा

ऋग्वेदप्रातिशाख्य में कहा गया है कि व्यंजनों का मेल ही संयोग है।<sup>45</sup> स्वर से अव्यवहित व्यंजन 'संयोग' कहलाता है।<sup>46</sup>

प्रातिशाख्यग्रन्थों में इसी तरह अन्य संज्ञाओं का भी उल्लेख किया गया है, लेकिन स्थानाभाव के कारण उनका विवेचन न करके केवल उनका नामोल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है – सवर्ण संज्ञा, उपधा संज्ञा, पद संज्ञा, नति संज्ञा, अपृक्त संज्ञा, लोप संज्ञा, स्थितोपस्थित संज्ञा, आप्रेडित संज्ञा, संहित संज्ञा, असंहित संज्ञा, प्रगृह्य संज्ञा आदि।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेदप्रातिशाख्य : प्रो० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, शोध संस्कृत ग्रन्थमाला, 1970

<sup>34</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/52

<sup>35</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 8/25-31

<sup>36</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 8/25-31

<sup>37</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 4/50

<sup>38</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/51

<sup>39</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/5

<sup>40</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/5

<sup>41</sup> पाणिनीय शिक्षा 5, पञ्जिका भाष्य।

<sup>42</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/20

<sup>43</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/36

<sup>44</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 13/20

<sup>45</sup> ऋग्वेदप्रातिशाख्य 1/37

<sup>46</sup> वाजसनेयीप्रातिशाख्य 1/48

2. पाणिनीय शिक्षा – व्याख्याकार – डॉ० श्रीनारायण मिश्र,  
प्रकाशक, चौखम्बा ओरियान्टलिया, प्रथम संस्करण, 1978
3. वाजसेनयीप्रातिशाख्य – डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, ज्ञानप्रकाश  
प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1975
4. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य : वी० वेंकटराम शर्मा, मद्रास  
विश्वविद्यालय, 1930